प्रस्तुति

दीदी नीलम आनन्द

मुद्रण - वैश्विक शिव शिष्य परिवार

भारतीय अध्यात्म के सिंहावलोकन से स्पष्ट होता है कि महेश्वर शिव चिरकाल से आदिगुरू एवं गुरू पद पर अवस्थित हैं। ग्रंथों में शिव के शिष्यों-प्रशिष्यों का नामोल्लेख मिलता है। पुरातन काल से शिव को रूद्र, पशुपति, ईश्वर, मृत्युंजय, देवाधिदेव, महाकाल, महेश्वर, जगतगुरू आदि उपाधियों से विभूषित किया गया है। उनके विभिन्न स्वरूपों की पूजा-अर्चना का अविरल प्रवाह सर्वाधिक लोकप्रिय होता आया है। चन्दा मामा सबके मामा और शिव घर-घर के बाबा हो गये। देवताओं के अधिपति, असुरों के आराध्य, योगियों के योगीश्वर, अघोरियों के अघोरेश्वर, तांत्रिकों के महाकौलेश्वर, कापालिकों के कपालेश्वर, गृहस्थों

के उमा-महेश्वर एवं निहंगों के श्मशानी शिव के बहुआयामी व्यक्तित्व का लोक-चेतना पर अक्षुण प्रभाव है। शिव समस्त विसंगतियों में संगति की स्थापना हैं। हम आप यदि विश्लेषणात्मक दृष्टि डालें तो विस्मय होगा कि शिव के विभिन्न स्वरूपों को अपनी पूर्णता में प्रसिद्धि प्राप्त हुई है किन्तु सदाशिव, दक्षिणामूर्त्ति और पंचानन की महिमा से मंडित उनका ज्ञान दाता स्वरूप जन-सामान्य में प्रतिष्ठित नहीं हुआ है। परमात्मा को ''शिव'' सम्बोधित किया गया है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म परम चैतन्यात्मा को ही ईश्वर, परमेश्वर, शिव, परमात्मा अथवा आत्मा आदि शब्दों से विभूषित किया गया है। निराकार या साकार शिव की महिमा में प्रयुक्त सभी उपाधियाँ महेश्वर पद

को इंगित करती हैं एवं उसी का वाच्य हैं। महेश्वर को प्रथमगुरू एवं आदिगुरू कहा गया है। शिव का गुरू स्वरूप ग्रन्थों में ''**वंदे विद्यातीर्थं महेश्वरम्**'', ''**शम्भवे गुरवे नमः**'', ''**गुरूणां गुरवे नमः**'' तथा ''**तुम त्रिभुवन गुरू वेद बखाना**'' की पंक्तियों से प्रदीप्त है किन्तु केवल वैचारिक तल पर ही। शिव के विभिन्न स्वरूपों की पूजा का क्रियात्मक पक्ष दृष्टिगोचर है लेकिन उनके गुरू स्वरूप से यथार्थ में जुड़ाव की व्याप्ति नहीं है। परमदानी-अवढरदानी शिव की घर-घर में पूजा, मनोकामनाओं की पूर्त्ति हेतु दुर्गम-सुगम मंदिरों की यात्रा, संकट निवारणार्थ महामृत्युंजय का जप, महाकाल, महाभैरव, महारूद्र और भूतनाथ की रौद्र रूप में अभ्यर्थना, पार्थिव

शिवलिंग पूजन, शिव परिवार की स्वतंत्र एवं सम्मिलित आराधना, रूद्राभिषेक आदि शिव के विभिन्न स्वरूपों से सानिध्य-लाभ के विपुल दृष्टान्त हैं। शिव से शिष्य के रूप में ज्ञानार्जन करने वालों की संख्या अपेक्षाकृत नगण्य है। निवर्त्तमान काल में लोगों ने शिव को अपना गुरू मानकर अनुपम ख्याति प्राप्त की है किन्तु अनजाने कारणों से दूसरों को शिवगुरू का शिष्य होने के लिए प्रेरित नहीं किया है। गुरू अपने शिष्य के व्यक्तित्व के सर्वोत्तम पक्ष को उजागर करते हैं और परम चेतना से उसका ऐक्य सुनिश्चित करते हैं। **महेश्वर शिव को भी अपने शिष्य के अविकसित ज्ञान के स्तर पर आकर उसे पूर्ण ज्ञान की स्थिति में ले जाना होता है।** शिवरूपी

ज्ञान से संजात एक सामान्य भावाचरण भी जगत के लिए अनुकरणीय प्रमाणित होता है। यथा, साकार शिव परिवार में शिव अभिज्ञान की एक अभिव्यक्ति का चित्रण द्रष्टव्य है। चित्रित साकार शिव परिवार में जन्मजात प्रतिकूल प्रवृत्ति वाले पशु-पक्षी भी सहज प्रेम से हैं। बाघ और बैल, साँप और चूहा, मोर और सर्प परस्पर विपरीत प्रवृत्तियों के धारक हैं पर शिव भावान्तर्गत आपसी प्रेम की प्रतिमूर्त्ति हैं। **सचमुच शिवभाव के शिखर की तलहटी में ही समस्त संकीर्णताएँ तिरोहित हो जाती हैं।**

महेश्वर शिव को अपना गुरू मानकर उनके शिष्य होने का कार्य सन् 1980 के दशक से प्रारम्भ है। इस कार्य के प्रारम्भ की पृष्ठभूमि स्वानुभूतियों की

अकथ्य लम्बी कहानी है। अपनी सीमा में उपलब्ध शरीरी गुरूओं, तांत्रिकों एवं घुमक्कड़ औघड़ों का साथ मन को रास नहीं आया। हताश मनोदशा विवशता में शिव को गुरू मान बैठी। **सोचा कि गुरू साक्षात परब्रह्म हैं तो परब्रह्म स्वयं गुरू क्यों नहीं?** "दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँक कर पीने" के अनुभव से ग्रसित, प्रताड़ित एवं सशंकित मन शिव को गुरू मानकर कुछ जानने और पाने की स्वाभाविक जिज्ञासा से व्यग्र होता रहा। कालान्तर में घटनाओं का कुछ ऐसा क्रम चला कि आरोपित एवं अर्जित शंकाएँ निर्मूल होती गयीं। **आध्यात्मिक आह्लाद ने अध्यात्म में आ गयी संक्रांति से प्रत्येक व्यक्ति को मुक्त करने की अंतःप्रेरणा जगायी। प्रत्येक**

व्यक्ति को शिव का शिष्य होने के लिए प्रेरित करने का दृढ़ निश्चय संकल्पित होता गया और तब जाना कि वैचारिक तल पर हम सबों तक आयी सूचना कि शिव गुरू हैं, एक यथार्थ है। स्वानुभूतियों का सिलसिला अब एक नहीं है। अनेक ने शिव को अपना शिष्य भाव देना आरम्भ किया है और अपूर्व अनुभूतियों का क्रम चल पड़ा है। शिव को गुरू मानकर प्रकारान्तर से अनुभूत हुआ कि अविश्वास और अश्रद्धा के दायरे में खड़े होकर भी ज्ञान-प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा से शिव को गुरू मान लेने की विवशता का स्थायित्व शिव गुरू से परिणाम की स्थिति है। श्रद्धा, विश्वास और समर्पण के अभाव में भी महेश्वर शिव की शिष्यता अंकुरित,

पल्लवित, पुष्पित हो सकती है, होती है। उनकी शिष्यता के फूलों की सुगंध अविश्वास, अश्रद्धा, संशय तथा सभी संकीर्णताओं को विनष्ट कर देती है। विश्व गुरू शिव स्वयं गुरू हैं। यदि सम्पूर्ण मानव सृष्टि उन्हें अपना शिष्य भाव अर्पित करती है तो शिव गुरू को विश्व मानव के अभ्युदय का उत्तरदायित्व लेना ही पड़ेगा। दूसरी ओर आज विकसित हो रही मानवीय चेतना के प्रेमपूर्ण चरमोत्कर्ष के लिए उस परम चेतना के दया भाव अर्थात् गुरूभाव से जुड़ने का एकमात्र विकल्प ही अब ग्राह्य है।

मान्य है कि लौकिक एषणाओं की पूर्त्ति एवं अनिश्चित भविष्य की अनावश्यक आशंकाओं से अधिकांश आदमी के द्वारा आज देवता पूजित हैं,

आस्तिकता अवस्थित है और इसी मूल कारण से शिव का देवाधिदेव, अवढरदानी और आशुतोष स्वरूप अत्यंत आकर्षक एवं सुखद प्रतीत होता है। सांसारिक सुखों की परिधि में हम दीर्घकालिक योजनाओं की परिकल्पना और उसके कार्यान्वयन में जगत की अपनी अल्पकालिक यात्रा भूल जाते हैं। अपनों की चिन्ता हमें सताती है लेकिन अपनी यात्रा विस्मृत हो जाती है। **सही स्थिति यही है कि हम भोग को भोगते नहीं अपितु स्वयं ही भुक्त हो जाते हैं।** किसी भोग को भोगाधिपति की तरह भोगना तथा स्वयं भुक्त हो जाना, दो पृथक स्थितियाँ हैं। हम सुख के साधन एकत्रित करते हैं लेकिन उनसे हमारा लगाव, उनके रख-रखाव की चिन्ता एवं विलगाव

का भय हमें दु:ख देता रहता है। निर्विवाद रूप से अपने सुख के लिए निर्मित सम्बन्ध एवं सामग्रियाँ ज्ञानाभाव के कारण हमें प्रताड़ित कर संत्रास देती हैं। समष्टि से सिमटा हुआ व्यक्ति मूल मानवीय गुणों से भी वंचित हो जाता है। जागतिक भोग की व्यवस्था भोगने के लिए है; स्वयं भुक्त हो जाने के लिए नहीं। शिव गुरू से आया ज्ञान जीने की कला सिखलाता है। शिव गुरू भोग और मोक्ष के अभिन्न रूप से दाता हैं। कहा गया है कि सद्गुरू की शरण में मुक्ति तथा भुक्ति दोनों प्राप्त होती है ''मुक्ति भुक्ति प्रसिद्धयर्थ नीयते सद्गुरूं प्रति''। **महेश्वर शिव तो सद्गुरूओं के गुरू हैं। अतएव उनका शिष्य होकर लौकिक-पारलौकिक मनोरथ स्वत: पूर्ण**

हो जाते हैं।

विदित है कि गुरू शिष्य की तलाश करते हैं। मानवात्मा मूल कर्त्ता परमात्मा की स्थिति के बोध की मनोदशा में गुरू का आश्रय लेती है अथवा उसे गुरू का आश्रय उपलब्ध होता है। मूल कर्त्ता की स्थिति का बोध भी जीवात्मा मनुष्य के अपने कर्त्ता-बोध की सीमा में ही उत्पन्न होता है। स्वकर्त्ता-बोध की समाप्ति तो केवल पूर्ण परमात्म-स्थिति में ही सम्भव है। फलत: शिष्य के कर्मानुरागी मन के लिए सद्गुरू की खोज एवं उनके आश्रय हेतु प्रयास अपेक्षित हो जाता है। **वैसे तो महेश्वर शिव के सृष्टि भाव (सिसृच्छा) और दया भाव (गुरू भाव) के अन्तर्गत ही जीव और जगत की समस्त स्थितियाँ**

हैं परन्तु व्यक्ति या शिष्य का कर्त्ता भाव शिव की सम्पूर्ण स्थिति के बोध से अनभिज्ञ रहता है। "अहं ब्रह्मास्मि" या "शिवोऽहं शिवं केवलोऽहम्" महज वागात्मक ही रह पाता है, बोधात्मक नहीं होता। यह गुरू दया से ही सम्भव है।

शिव के निराकार-साकार स्वरूप में विभेद नहीं किया गया है। सदाशिव के रूप में वे इच्छा, ज्ञान, क्रिया, चित् और आनन्द के अथाह सागर हैं। अतएव निराकार-साकार दोनों स्थितियाँ हो सकती हैं। शिष्य को स्वतंत्रता है कि आरम्भिक अवस्था में वह गुरू की निराकार स्थिति को स्वीकार करे या साकार स्वरूप को अंगीकार करे। किसी भी परिस्थिति में शिष्य के लिए शिवगुरू की मात्र साकार

स्थिति स्वीकार्य नहीं है। शिव के शिष्य शिवगुरू को भावसत्ता के रूप में नमन करते हैं। कहा गया है कि **हे महेश्वर! तुम्हें जानना, समझना और पहचानना अनुमानस की सीमा से बाहर की बात है। तुम जैसे भी हो तुम्हें बारम्बार नमस्कार है — "तवतत्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वरः, यादृशोऽसि महादेवः तादृशाय नमोनमः"।**

शिवगुरू की दया कालान्तर में गुरू सत्ता की स्थिति स्पष्ट कर देती है। यह तो सर्वथा मान्य है कि गुरू का शरीरधारी होना आवश्यक नहीं है। शिव के शिष्य जानते हैं कि शिवगुरू दया भाव के अक्षयस्रोत हैं और सृष्टि के कण-कण में उनकी सिसृच्छा के साथ सतत निसृत दया भाव भी सन्निहित है। एतद् मानव के

अस्तित्व में गुरू-भाव की स्थिति है। व्यक्ति जैसे ही शिव को शिष्य-भाव निवेदित करता है, मानवीय चेतना में अवस्थित उनका दया भाव स्वतः कार्यरत हो जाता है। वस्तुतः शिव गुरू की दया ही वास्तविक दीक्षा है। शिव गुरू के शिष्यों के लिए पारम्परिक दीक्षा आवश्यक नहीं है। जीवात्मा से जुड़ी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष स्थितियाँ एवं माध्यम ही शिष्य भाव में प्रतिष्ठित मनुष्यात्मा को शिव गुरू की दया के वशात् शिवोन्मुख करने लगते हैं। उल्लेख्य है कि मानव शरीर में आविर्भूत सभी गुरूओं एवं सद्गुरूओं में महेश्वर शिव का दया भाव ही विभिन्न अंशों में प्रस्फुटित होता है। शिवगुरू दया के एकमात्र दाता हैं। शेष सभी स्वनामधन्य गुरू तथा सद्गुरू प्रदाता के रूप में पूजित हैं। कहा गया

है कि बाह्य गुरूओं को भी आन्तर गुरू होना होता है। वाणी, शब्दों और मौन-व्याख्यान की सीमा से भी परे जाकर शिष्यात्मा की परमात्मा से अन्विति सुनिश्चित करनी होती है। गुरू सत्ता की शरीरी स्थिति गुरू-शिष्य सम्बन्ध में महत्वपूर्ण नहीं मानी जाती है। आज भी गुरूओं एवं सद्गुरूओं के देहावसान के उपरान्त उनकी शिष्य-परम्परा निर्विघ्न चलती है।

मनुष्य के सहज प्रेम से परमात्मा लभ्य है। इसी प्रेम-उत्स से भक्ति, आगमिक और तांत्रिक धारा प्रवाहित हुई है। प्रेम मनुष्य का जन्मजात गुण है इसलिए प्रेम से सम्बद्ध परमात्म-पथ की सारी विधाएँ सम्प्रदाय, जाति, लिंगादि के भेद को नहीं मानती हैं। शिव गुरू से शिष्य सम्बन्ध की भावावस्था गुरू दया से उत्तरोत्तर प्रेमाभिमुख होती जाती है। भाव

सम्बंध प्रेम में परिणत हो जाता है। प्रेम शिव गुरू से शिष्य को एकमेक कर देता है। ज्ञातव्य है कि शिव का शिष्य होने के लिए केवल स्थायी शिष्यभाव अनिवार्य है। व्यक्ति के सभी नाते-रिश्ते भाव जनित हैं। गुरू-शिष्य का सम्बन्ध भी भाव भूमि पर आधारित होता है। आज के व्यक्ति में प्रबल जागतिक आकर्षण के कारण अलौकिक उन्मेष काल विशेष में उत्पन्न तो होता है किन्तु अन्तश्चेतना को प्रभावित नहीं कर पाता है। शिव गुरू के प्रति शिष्य भाव प्रगाढ़ होकर व्यक्ति का स्वभाव हो जाए, ऐसी स्थिति सामान्य नहीं है। शिव को अपना गुरू मानकर उनका शिष्य होने के क्रम में प्राप्त अनुभूतियों के आधार पर तीन सूत्र समाहृत किये जाते हैं। ये तीनों सूत्र

शिव शिष्य होने में सहायक हैं और परिणामदायी भी। ये तीनों सूत्र निम्नांकित हैं :

प्रथम सूत्र :- शिव के शिष्य होने के जिज्ञासुओं एवं शिव शिष्यों में स्वस्फूर्त शिष्य भाव के जागरण हेतु आवश्यक है कि शिव गुरू-सत्ता को ''हे शिव, आप मेरे गुरू हैं, मैं आपका शिष्य हूँ, मुझ शिष्य पर दया कर दीजिए'' यह मूक संवाद प्रतिदिन सम्प्रेषित किया जाए। शिव शिष्यता के विचार की आवृत्ति और अपने गुरू शिव से दया की याचना आवश्यक है।

प्रथमत: व्यक्ति यह सूचना प्राप्त करता है कि शिव गुरू हैं। इस विचार के विभिन्न आयामों से अवगत होने के उपरान्त वह शिव को गुरू मानने की

मन:स्थिति में आता है। एतद् वैचारिक तल पर वह शिव को अपना गुरू मानता है। ज्ञातव्य है कि शिव गुरू से भाव स्तर पर ही सम्पर्क संभव है। अतएव शिव को गुरू मानने के पश्चात् इस विचार की आवृत्ति आवश्यक है कि "शिव मेरे गुरू हैं और मैं उनका शिष्य हूँ।" शिव के शिष्य होने के विचार का व्यक्ति के मन में घनीभूत होना शिव गुरू के प्रति शिष्य-भाव जागृत करता है। इस विचार की आवृत्ति शिष्य-भाव उत्पन्न करती है। मनुष्य का सामर्थ्य एवं उसकी शक्तियाँ सीमित हैं। पुरुषार्थ की भी सीमा है। शिव शिष्यता के विचार की आवृत्ति हेतु गुरू-दया की याचना अपेक्षित है। महेश्वर शिव का दया भाव ही गुरू भाव है। सद्गुरू मात्र अपनी दया से शिष्य को अपने जैसा बनाते हैं। कहा गया है कि "मोक्ष मूलं

गुरूकृपा"। स्मरण रखना है कि शिवगुरू की दया ही शिष्य के जीवन का आधार है।

शिष्य भाव के जागरण हेतु सर्वदा यह स्मरण रखना चाहिए कि शिव मेरे गुरू हैं और गुरू दया ही लौकिक-पारलौकिक चरमोत्कर्ष का रहस्य है।

द्वितीय सूत्र :- दूसरों के साथ शिव गुरू की चर्चा शिष्य-भाव जागरण की अनुपम विधा है।

सर्वविदित है कि किसी भी क्षेत्र में स्वयं प्रयास कर परिणाम प्राप्त करना अपेक्षाकृत कठिन होता है तथापि दूसरों की मदद उस कार्य को सुगम कर देती है। प्रथम सूत्र में स्वत: प्रयास की स्वतंत्र विधा निरूपित है। दूसरों के साथ शिवगुरू की चर्चा

परिसंवाद का एक वर्तुल निर्मित करती है। गुरूचर्चा परिचर्चा में परिणत हो जाती है। सभी वक्ता एवं श्रोता होते हैं। यह वर्तुल शिव शिष्यता के विचार अथवा भाव को प्रगाढ़ करता है। शिव की शिष्यता का बुद्धि जनित विचार बोधि में रूपान्तरित होने लगता है। स्वत: शिव गुरू सत्ता विचार से भाव के धरातल पर अवस्थित होने लगती है। व्यक्ति का मन, जो अपने जागतिक स्वभाव के कारण संसार की ओर स्वचालित विधि से गतिमान है, दूसरों के साथ शिव गुरू चर्चा की स्थिति में शिवगुरू से जुड़ाव की दिशा में चल पड़ता है। प्रमाणित है कि व्यक्ति के मन में किसी के मित्र होने का बोधात्मक ज्ञान मित्र-भाव पैदा करता है। महेश्वर शिव स्वयं गुरू हैं, इसके

सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पक्ष को समझाने की प्रक्रिया में व्यक्ति का मन सुगमता से स्वयं भी यह समझने लगता है कि शिव गुरू हैं। शिव के गुरू होने की समझ अथवा उसका बोधात्मक ज्ञान वक्ता के मन में स्वत: शिष्यभाव का प्रबल उद्वेग पैदा करता है।

दूसरों के साथ शिवगुरू की चर्चा शिव शिष्यता के विचार की आवृत्ति को सुगम और सहज बनाती है। आज का व्यक्ति दूसरों को समझाने में सुखानुभूति अनुभव करता है। एतद् व्यक्ति के लिए शिवगुरू चर्चा सुगम है और अत्यन्त परिणामदायी भी। शिव के शिष्य इसी कारण से शिष्य भाव की जागृति हेतु दूसरों के साथ शिवगुरू की चर्चा करते हैं और करने को कहते हैं। **मैंने अनुभूत किया है कि शिष्य**

के कर्त्ता मन के लिए निश्चित रूप से गुरूदया प्राप्ति का यही सरल एवं सुगम साधन है तथा गुरू आदेशित कर्म भी।

तृतीय सूत्र :- शिष्यता के भावान्तरण के लिए अपने गुरू शिव को प्रणाम निवेदन का प्रयास आवश्यक है।

विश्व में साधना एवं उपासना की अनेकानेक स्थापित विधियों में शिव पंचाक्षर मंत्र "नमः शिवाय" का जप चिरकाल से सर्वमान्य है। मंत्रों का जप माला अथवा अजपा-जप के माध्यम से किया जाता है। मंत्र जप की अजपा-जप विधि सर्वोत्तम है। अजपा-जप विधि से "नमः शिवाय" का मनन शिव को पल-प्रतिपल प्रणाम निवेदित करने की विधि

है। ज्ञातव्य है कि शिव पंचाक्षर मंत्र महेश्वर शिव के समग्र स्वरूप को प्रणाम सम्प्रेषित करता है। नमन का निवेदन पूर्णतः एक भावस्थिति है। गुरू भाव सत्ता हैं। भाव जनित प्रणाम ही उन्हें ग्राह्य है। मंत्र विज्ञान की विवेचना में हम पाते हैं कि मंत्रों का जप भाव की स्थिति में ही फलदायी है। शब्दों का एक विशेष समूह अथवा अक्षर विशेष, मंत्रों का बाह्य रूप है किन्तु प्रत्येक मंत्र में किसी विशेष देवता अथवा अशरीरी भाव सत्ता की स्थिति होती है। मंत्रों का जप भाव के अन्तर्गत ग्रहण होने के उपरान्त ही परिणामदायी है। शिव के शिष्य भावान्तरण हेतु अजपा-जप विधि से अपने गुरू को नमन करने के निमित्त "नमः शिवाय" का सहारा लेते हैं। अजपा-

जप में श्वास-प्रश्वास की सामान्य गति पर मंत्रों का सायास जप जब गुरू कृपा से अनायास चलने लगता है तभी अजपा जप परिभाषित होता है। स्मरणीय है कि श्वास-प्रश्वास पर मंत्रों का स्वचालित गति से आवागमन (अजपा-जप) एवं मंत्रों का भाव प्रवेश गुरू दया से ही संभव है।

शिव गुरू नमन हेतु रूद्राक्ष अथवा अंगुलियों पर शिव पंचाक्षर मंत्र के जप की प्रक्रिया भी अपनायी जा सकती है। माला जप में गणना की एक सौ आठ संख्या निर्धारित है। एक सौ आठ की संख्या का निर्धारण काल एवं स्थान की गणना के गुणनफल से है। काल की गणना सत्ताईस नक्षत्रों से की गयी है। एक सूर्य इन नक्षत्रों पर संचरण करते हैं और चार

दिशाओं में कालगत् सृष्टि की स्थिति और विनाश का क्रम सम्पन्न होता रहता है। सत्ताईस नक्षत्रों एवं चार दिशाओं पर नृत्य करता हुआ काल गुणात्मक प्रवृत्ति का है; अतएव सत्ताईस नक्षत्रों एवं चार दिशाओं का गुणात्मक योग एक सौ आठ, मंत्र जप की संख्या निर्धारित मानी गयी है। स्वतंत्र दिशाएँ चार ही हैं कोणिक दिशाएँ स्वतंत्र दिशाएँ नहीं हैं। स्मरण रखना है कि "नमः शिवाय" का मनन एक दिवारात्रि में एक सौ आठ बार यानि एक माला किया जा सकता है। मानसिक जप की इस प्रक्रिया में अपने गुरू शिव को मंत्रानुक्रम से भाव प्रणाम की मन:स्थिति आवश्यक है। यह प्रणाम शिष्य भाव के स्फुरण तथा अपने प्रारब्ध जनित कष्टों को मिटाने के निमित्त

मननकर्त्ता की शक्ति से किया गया उद्यम है।

नमन की प्रक्रिया में भाव प्रवेश की स्थिति गुरूदया से लभ्य है। साथ ही साथ शिष्य गुरू की दया से ही अपने कर्म बंधनों से मुक्त होता हुआ उनकी असीम दया को प्राप्त करता है।

ध्यातव्य : निरुपित सूत्र त्रय में द्वितीय सूत्र जन-सामान्य की पात्रता के अत्यन्त अनुकूल है। आज का व्यक्ति अपने स्तर पर सहजता से आवश्यक-अनावश्यक वार्ता की मनःस्थिति में रहने को अभ्यस्त है। दूसरों के साथ शिवगुरू की चर्चा वार्तालाप की विधि से शिष्य भाव के जागरण की अद्भुत विधा है। विश्व के वितान पर अध्यात्म के प्रादुर्भाव एवं

मानव सृष्टि के अभ्युदय हेतु जगद्गुरू महेश्वर शिव की जन-जन के लिए गुरू स्वरूप में उपलब्धता ही एक मात्र अपरिहार्य विकल्प है। इस स्थिति में जनसामान्य शिव को गुरू मानकर अपने सामर्थ्य के अनुरूप शिष्य भाव का जागरण स्वयं में पा सके तभी शिव यथार्थ में व्यक्ति के गुरू होंगे। अस्तु, शिव गुरू चर्चा की विधा का विधान है। महेश्वर शिव का यथार्थ में जन-जन का गुरू होना ही जगद्गुरू एवं महागुरू पद की सार्थकता सिद्ध करता है। **मैंने अनुभूत किया है कि दूसरों के साथ शिवगुरू की चर्चा शिवगुरू द्वारा आदेशित कर्म है एवं यही विधा जन-सामान्य के लिए ग्राह्य भी है।** स्मरणीय है कि शिव के शिष्य शास्त्रार्थ नहीं करते हैं। शिव

गुरू की चर्चा से संजात एवं प्रगाढ़ शिष्यभाव स्वयं एवं समूह को आप्लावित कर दे, बस इसी प्रयोजन से वे शिवगुरू की चर्चा करते हैं। शिवगुरू की चर्चा केवल वार्त्तालाप नहीं है। यह एक परिणामपरक, अन्तहीन और अविरल आत्मानुभूति है।

अन्यान्य : शिव शिष्य सुविधानुसार हाथ की कलाई में बारह दानों के रूद्राक्ष का कंकण पहनते हैं। बारह की संख्या बारह सूर्य, बारह ज्योतिर्लिंग तथा बारह राशियों की मान्यता के अनुरूप है। कलाई में कंकण दूसरों के लिए कौतूहल पैदा करता है और जिज्ञासा करने पर शिव शिष्यों को शिव के स्वयं गुरू होने की सूचना देने का सुअवसर प्राप्त हो जाता है।

अस्तु, शिव गुरू की चर्चा चल पड़ती है। जागतिक व्यस्तता और आकर्षण में तल्लीन मन गुरूभाव से जुड़ने के लिए बाध्य होता है। प्रतिदिन बारम्बार की गुरू-चर्चा शिष्य-भावोत्पत्ति की अनोखी प्रक्रिया है। रूद्राक्ष के दाने मानसिक-आध्यात्मिक सूक्ष्म तरंगों के वाहक माने जाते हैं। **कलाई में धारित रूद्राक्ष का कंकण शिवगुरू की चर्चा में सहायक है किन्तु शिव-शिष्यता की पहचान तथा उसका प्रतीक नहीं है। इसे अनिवार्य नहीं माना जा सकता है।**

शिव के शिष्य किसी व्यक्ति द्वारा शिव को अपना गुरू मानने पर उसकी इच्छा से उसके शिष्य होने की सूचना अंतरिक्ष को देते हैं। शिव-शिष्य होने की मनोदशा का यह संवाद "जागऽ-जागऽ महादेव"

लोग महेश्वर शिव को अपना शिष्य भाव अर्पित करने की दिशा में अग्रसर हों, यही मनसा-वाचा-कर्मणा शिव शिष्यों का एकमात्र लोकाचरण है। शिव के गुरू स्वरूप की जन-जन में स्थिति से विश्ववाटिका में अध्यात्म अवतरित होकर सहृदयता, समानता और शांति के सुमन खिला देगा और प्रेम के पराग से मानवता सुगंधित हो जायेगी।

सम्पर्क सूत्र :

09939561104, 09234241194, 07488543290
0651-2442580
www.vaishwikshivshishyaparivar.com

e-mail : info@vaishwikshivshishyapariwar.com

प्रथम संस्करण

मूल्य : आपका शिव शिष्य होना।

Printed at

Kailash Paper Conversion Pvt. Ltd.
2 Bharatpuri, Purulia Road, Ranchi